मेरी निकटतम
चन्द्रकान्ता के नाम

राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर के आर्थिक
सहयोग से प्रकाशित

कविता से पहले

कविता छपती है, मगर मुश्किल से। क्योंकि कविता व्यवसाय-विरोधी है। इस कठिनाई के बीच मेरा यह पहला कविता-संग्रह प्रस्तुत है, जिसकी अधिकांश कविताएं सन् 80 के बाद की है।

विश्व-कविता का एकमात्र तकाजा, जो मानता हूं यह कि वह मनुष्य के पक्ष मे हो। किसी खास विचारधारा से कवि का लगाव एक अच्छी बात हो सकती है, लेकिन अनिवार्य नही। विचारधारा पर सवारी गाँठना एक बात है, तो उसी का वाहन बन जाना दूसरी।

आज की कविता सरचनावादो और समाजवादी दो दृष्टियो के फन्दो मे कारुणिक ढग से भयग्रस्त होकर झूल रही है। कविता को विचारधारा-विशेष की पहरेदारी शोभा नही देती, खासकर जबकि उसे चमकती हुई राजनीतिक वर्दी और पहना दी जाती है। आज की असलियत यह है कि कविता को राजनीति का शत्रु होना चाहिये—सक्रिय नही, वैचारिक। क्योंकि राजनीति ने सामान्य व्यक्ति को कही का नही छोडा है। कविता की आत्मा ही नही, उसका काय और व्यवहार तक मनुष्य के पक्ष मे स्वत समर्पित होना चाहिए। इसी एक छोटी बात मे, दुनिया के तमाम साहित्यिक आन्दोलनो की हजारो अच्छो-भलो बाते सिमट आती हैं। और, यही कविता से पहले समझ कर चलने की बडी जरूरी बात है।

मेरी कविता की इस असमाप्त यात्रा के प्रारभिक चरण मे अपने साहित्यकार-विचारक प्रबुद्ध मित्रो का—विशेषकर डा सुधा गुप्ता,

डा. कैलाश जोशी, आनन्द कुरेशी, मासूम नजर आदि का मुक्त हृदय से आभार व्यक्त करता हूं, जिनकी कद्रदानी से इस संग्रह की रचनाओं के साथ मेरा हौंसला बढ़ता गया।

अन्त में, इस संग्रह के प्रकाशन में वित्तीय सहयोग प्राप्त करने के निमित्त राजस्थान साहित्य अकादमी (पग्यिार), उदयपुर तथा इसे शीघ्र व मनो-सुन्दर आकार में मुद्रित करने के लिए शिल्पी प्रकाशन, जयपुर के प्रति आस्था सहित कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

26 1 1986
डूंगरपुर (राजस्थान)

—सत्यनारायण व्यास

सिलसिला

१

वेदना का भील-नृत्य

काली रात
भयानक सन्नाटा
विचारो का मरघट धधकता है,
माटी की हडिया-सा माथा
बूढे बरगद की डाल पर लटका कर
प्रेत-सा उन्मत्त मैं
वेदना का भील-नृत्य करता हू ।

जलती चिता को ठोकर लगा
अधजली लाश बाहर खीच लेता हू
देखता प्रतिबिम्ब उसमे,
ढूढता हू नियति अपनी
अचानक तभी—
कलेजे की धडकन को चीरता
चीखता एक चमगादड
मेरा अवचेतन-घट फोड जाता है
और फडफडाकर वह
जबरे बरगद की लम्बी जटा मे
उल्टा लटक जाता है,
तब मै और अधिक

बबर हो उठता हू,
अभिव्यक्ति के ब्रह्मराक्षस से
निर्णायक युद्ध लडने को
लाश के भीतर अपनी
रीढ की हड्डी ढूढता हू
ताकि शब्दो का वज्र निर्मित हो।

माटी का हाड–चाम
माटी का लोंदा,
हर रात रौंद जाता है
मेरे विचार–मरघट को,
जिजीविषा की दारू
जी भर पी कर मैं
अपने नयनागारो मे
हाथ की नगी तलवार के बिम्ब नचाता हू,
और दूसरे क्षण
भीषण अट्टहास के साथ
घने रोमीले अपने वक्ष को रत कर
लहू की धार मे
दुनिया को नहाते देखता हू—
वेदना का यह भील–नृत्य
रचना की शब्द–परे पीडा है।

भीतर के बीहड अंध जगल मे
न मरघटो की गिनती है
न लाशो, चिमगादडो की,
रह-रह कर अंधड
इस वेग से उठते हैं
कि दबाते-दबाते भी
उन धधकती चिताओ की राख के कतरे
चन्द कागजो पर फैल जाते है,
गोया—
भीषण विनाश की अशब्दता को
रचना के आकार मे ठेल जाते हैं।

□

२

शब्द के प्रति

शब्द,
तू कहा से चला ?
कहा तक चलेगा,
और चलता ही जा रहा है अनवरत'
आकाश की असीमता से
कानो की सकीणता तक फैला
तेरा अनन्त यात्रा-पथ है।

तेरे जन्म लेते ही
मानो,
आकाश कान मे उतर आता है
या कान हो जाता है आकाशाकार ?
और इस अलक्षित गहन व्यापार मे
केवल एक वस्तु रह जाती है शेष—
कासे के थाल-सी झनझनाती ध्वनि
जो तेरा ही पद-चाप है
ओ मेरे कठ के देवता।

शब्द, कभी तू कठ से झरता है निर्झर-सा
तो कभी फूल-सा खिलता है,
तो कभी धधकता है क्रान्ति के अगार-पथ-सा

—कितना बहुरंगी शरीर तेरा।
कैसे करूं पहचान तेरी आत्मा को ?
मैं क्या कहूं ?
कैसे कहूं शब्द तेरे बिना
कि तेरी आत्मा क्या है।
क्योंकि, बोलता हुआ तो मैं तेरा अनुचर हूं,
मगर मौन हो जाने पर तो लगता है,
मैं तेरा दासानुदास हूं
ओ मेरे सम्राट,
तेरे कान्तिमान चरणों की सेवा
जीवन का एकमात्र सम्बल,
जब अवशभाव से
हो जाता हूं चंचल
रचना के पल में,
तब जाने कहां
किस सूक्ष्म विज्ञान से
मेरी कलम की स्याही में
घुल जाता है अमल धवल गंगाजल।

शब्द,
तू मेरा जन्मजात साथी है
रोना, हंसना या पुकारना मां को
सब-कुछ तुझी से संभव है,

सोचता हू हजार बार
तुझसे भिन्न कहीं कुछ है क्या ?
तू ही तो है देह के भीतर लिपटे मन-सा
वह पहला और आखरी माध्यम
जो स्वय सोचवाता है मुझे
ससार का हर कोण,
फिर तुझसे भिन्न वस्तु है कौन,
जिसे मैं तेरे बिना सोच सकू
खोज सकू ?
ओ विचारो का इन्द्रजाल फैलाने वाले जादूगर,
तेरी माया का कायल है कवि
तू उसके चिंतन का, हो, न हो।

□

यहां कोई नहीं जगता

सिगरेट का कसैला धुआं
जिन्दगी को—
अनुपस्थिति मे परिभाषित करता है,
पीले ततैयो के मटमैले पखो पर
गरमी की दोपहरी
बेकार भुनभुनाती है—
यहा कोई नही जगता।

नए युग-निर्माण के
बदरग हुए ब्लू-प्रिण्ट
मखमली तकियो तले
मुड-तुडकर सिसकते है,
दस्तक है बेमानी,
घटी का बटन व्यर्थ,
यहा कोई नही जगता।

किसी गहरी नीद ने खरीदा है
मानव की ताकत को—
कौडियो के भाव,
सीख लिया लोगो ने
खीच-तान भर लेना

अपना अपना आमाशय-जिसको जो मिल जाये,
नोटो के बण्डल,
रोटी के टुकडे,
मोने के बिस्किट,
फटे-गले चिथडे-जिसको जो मिल जाये—
खुला सघर्ष जारी है—
घुस जाओ,
खीच लाओ-जिसको जो मिल जाये,
झिझको मत,
डर किसका,
रक्षक सब सोये हैं—
चीखो या चिल्लाओ,
हुल्लड करो, नाचो-गाओ,
पचाओ गला-यहा कोई नही जगना
कोई नही मुनता।

□

8

मेरा स्वरूप

सडक बीच सडता
मरण वरता
यमलोक गमनातुर हू
मैं छटपटाता कुत्ता—
निर्बन्ध चिन्मय ब्रह्म की ही
भिलमिलाती ज्योति-सत्ता ।

फुटपाथ पर,
गत भूख-प्यास
नग्न-नि सग, औंधा पडा
अचल ध्यानलीन रहता मै,
क्रीडारत रहता हू
मैं ही—
चपल मूर्ख कचन मे ।

दु ख-सुख दो हाथ मेरे
वमग्त चिर
ज म-मृत्यु की सास
आती-जाती है—
मेरे विराट विश्व-वक्षस्थल में ।

मै नवदम्पति का राग,
नाग विषयो का
सहजभाव यौवन को डसता हू,
किन्तु उतार उसे देता हू सद्य,
निज अनर्थ मस्तक-मणि
जो कराल फण पर मेरे
नट-नागर-सा विजय-नृत्य करता है।

निर्धन का चित्कार
धनिको का अट्टहास मैं कर्णभेदी हू,
सम्राट हू चक्रवर्ती
विराट भूमण्डल का,
क्षुद्रतम कीडा हू—
पडा विष्ठा मे
कुलबुलाता रहता हू।

अपनी ही ईक्षा से
आत्म-विस्तार हेतु
मकडी ज्यो जग-जाल बुन लेता हू,
पलता हू जठर मे जननी के
ढलता हू उष्ण तरल मदिरा बन यौवन मे,
अस्थिशेष जल जाता हू—
चिता पर शान्त मरघट मे।

□

गिद्धो को मास की रखवाली सौपना
मेरे देश का हो गया स्वभाव,
अराजकता का अर्थ
अब हो गया है "व्यवस्था"।

नाबालिग आजादी और बूढे भारत के
इस अनमेल विवाह मे
हम सब बाराती है परेशान
परस्पर कोसते है
मन मसोसते ह,
यहा तक कि स्वार्थ के निरन्न जगल मे हम
एक-दूसरे का नर-मास खाने की सोचते है,
इधर, हमारा बूढा वर भारत
सिर धुनता है,
नाबालिग स्वराज-बाला का कपित कर छोड समय
फिर से गुलामी यानि समाधि के—
स्वप्न-जाल बुनता है।

एक थुल-थुल, दूसरा कंकाल
तीसरा लाल-नयन क्रोधी है,
प्रेतो के झुड हम

सदाशिव भारत की बारात के
अमगलकारी गण नही तो क्या है ?

सत्य, अहिंसा और मानवता की सुन्दर परिया
विश्व के झरोखा पर बैठी
हम पर थू-थू करती हैं,
हमारी शक्ल तक से वे नफरत करती है—
भला हम कब ऐसा गणवेश छोडेगे ?
शक्ति के कथित कोरे उपासक हम,
शायद अपने ही भाई का
लहू पीकर छोडेगे ।

सदाशिव वृद्ध भारत की इस बारात मे
हिन्दू हैं, मुस्लिम है,
क्रिश्चन और खालसा हैं,
मुझे दुःख है कि आजादी पावती,
जो बहुत नाजो से पली है,
हमारे बूढे राष्ट्रदेव को फटकारती हैं—
"कहा से ये निखट्टू, सडियल, बत्तमीज
गन्दे बाराती घेर लाए हो,
जिन्हे तमीज से जीना,
धीरज और शान्ति से साथ चलना तक नही
आता है,

आप मेरे सुहाग हो, और रहोगे,
पर आपकी इस बारात पर लानत है।"

—टूटे सींग के सविधान-बैल पर बठे महादेव
आज शम से पानी पानी हैं,
किन्तु हिमालय की गोद नही है यहा,
शर्म की बाढ मे गले तक डूबी
निलज्ज राजधानी है,
ससद भवन है कि हिचकोले खा रहा है,
हम सभी झगडालू भूतगण
बचने का सहारा ढूढते हैं
मरते-डूबते भी अपने हाथ लम्बे करके
एक-दूसरे का सिर मूडते हैं,
बूढे बल पर बठे भोले भडारी
"अनुशासन" का शृगी-नाद कर रहे ह
और त्रिपुर सुन्दरी आजादी
भौंहो मे बल डाले
मुह मोडे रुठी खडी है।

बारातियो,
यह बेला—
हमारे जीवन के आराध्य के
राष्ट्रदेव के मानापमान की नाजुक घडी है,

न आए बाज आदत से तो सुन लेना
डमरू का कर्कश निनाद कहता है—
"भविष्य मे मिलेगा नही न्योता
ऐसे गदे आचरणहीन प्रेतो को,
भारत मे जन्म तक लेने का हक नही होगा,
जिन्हे तमीज से जीना
और भाईचारे से
साथ चलना तक नही आता।"

□

अनंग के प्रति

तू चचल मन मे अचल सदा
है तप्त रुधिर के मत्त ज्वार,
यो कर न प्रताडित
यौवन निर्बल
आहत रोता समर हार,
कुछ पल कर लेने दे विराम
निशिदिन यह कैसो क्रूर टव
बस कर रे दुजय कामदेव,
यो मत हो मुझसे एकमेव ।

ये फूलो के विपबुभे बाण
तन मन मे जिनमे लगे आग
रे दुर्निवार
कुछ तो विचार,
यह वयसधि का मृदु उभार
क्या जल न जायगा सह प्रहार ?
मत मार तीर मत मार, मार
पीडा अपार ।

तू सुधा-गरल का मदिर पेय

मादक लीला का लिए ध्येय
भव मे चिर-नव सा रमा हुआ,
तू ललित हिरण्मय-सा भुजग
बन जन-समाज का कठहार
निज गडा गरलमय क्रूर दष्ट्र
पी स्वस्थ रक्त
कर दश
सभी कुछ ध्वस।

तू कहा छिपा रे कुसुमायुध ?
मन मे, कुच बिच ?
कच मे ? या शशिमुख मे ?
या अपाग की नील पलक मे ?
अधर किसलयो के पीछे
या चिबुक गत मे ?
अथवा स्मर तू नाभि-कदरा मे सोया है ?
बतला तो दे कहा छिपा तू
खोज-खोज कर हार गया ससार
अपलक रहा निहार
न पारावार।

शोणित उद्वेलक, विवेक-हर
छली, तस्करी के पारगत

चूस-चूस जीवन का अमृत
आयु-कलश मे विष भर देता
स्थाणु शस्य तरु को कर देता
सवस्व हरण कर लेता ।

हे विश्वयोनि, हे प्रणयनाथ
कहो किस भाँति सहू आघात
सच तू वहुत बडा व्याघात
अविद्या-मूल
मनुज की भूल
छोड भी दे तन का आवास
तनिक करलू उससे मैं बात
रचा जिसने अनग तव गात
हटजा उसे झुकालू माथ ।

□

७

कौन जाने

पेड तले बाबा की धूनी
कितनी उदास है,
बित्ते भर कौपीन मे
कितना विलास है—कौन जाने ?

धूनी की राख मे
चिमटा गडा क्यो औधा,
धीमे धीमे सुलग रहा
क्यो लक्कड का बोटा—कौन जाने ?

उलझी जटाओ मे जीवन उलझाए
आखो मे लाल डोरे
भसमी रमाए,
शकर का रूप धारे
जाने किस गिरिजा पर
टकटकी लगाए है—कौन जानें ?
गाँजे के दम मे
चिलम उर्वशी बनी है
जाने कहा खो गया रे
बाबा का उदास मन—कौन जाने ?

□

८

घेरों के बीच

घूमते पखे के वृत्त-सी दुनिया को
किधर से पकड़ें ?
ठोस वस्तु भी शून्यता का धोखा है।
वृत्त जीवन का—
नजर के वृत्त मे सीमित,
नजर के पार—
पार जीवन के—
अनजाना अनदेखा कोई दूसरा वृत्त
अपने भीतर अनेक वृत्त लिए चलता है।

घेरो मे घिरी बेबस जिन्दगी,
घेरो पर घेरे बनाती चली जाती है,
परमाणु-भेदन से बिखरते
इलेक्ट्रोन व न्यूट्रोन की तरह,
टूटन से सृजन,
फिर सृजन से टूटन—
धरती के गर्भ मे छिपा
करोड़ो वर्ष पुराना यह द्वन्द्व
भीतर ही भीतर
धड़कते कलेजे मे

पत्थर के अन्तर मे
स्वचालित है ।

पानी सा बहकर बर्फ मे बदल जाने
या जीवन मे गलकर लाश मे ढल जाने मे
फर्क कितना है ?
सिर्फ इतना—
कि पानी खुद को नही पीता कभी,
मगर हम दूसरो को पी जाने के चक्कर मे,
खुद को भी निगल जाते है
और यह हादसा
महज इन्सान के साथ होता है,
फिर चाहे रोता रहे वह या हँसता,
जो हो चुका एक बार जिस रूप मे
वह फिर नही होता ।

वे तमाम इशारे,
खुबसूरत नजारे,
महज—
माटी से महकते बदन के सहारे ।
देह का निरन्तर खोलती-बाधती माटी की गध
फूलो को सहलाते तितली के पखो पर
रग छिटका कर
कटे बबूल के बदसूरत ठूठ मे लुप्त हो जाती है,

अभी सुन्दरता की परिभाषा पर
बहसें बाकी हैं,
क्योंकि ऐन्द्रिक अनुभूतियां
सौन्दय के नमूने की बाहरी झांकी है।

मरघट की मुलायम राख
जब बवंडर के कन्धों पर बिफर जाती है,
तो लगता है,
नीले आकाश नीचे
तन गया है दूसरा धूसर आकाश।

बात यह कि हम कुछ भी न बन पाने की पीडा मे
सिफ बनते हैं,
काले छाते-सा खाली
घमड से तनते है,
सिर बचा ले जाते हैं पानी से
मगर भीग जाते हैं घुटनों तक मय वस्त्रों के,
छाते का वह टीसता अधूरापन
बूंद बूंद रिसता है, गीले कपडो मे
सूख जाने तक।

सर से एडी तक चक्कर लगाते
खून के लाल घेरे से

जन्म लेता है चिंता का काला घेरा,
फिर उसमें से निकलते जाते हैं बहुरंगी—
कई और घेरे—
तेरा/मेरा/इसका/उसका
न जाने किस-किस का—
हर आदमी के चेहरे पर
तनावों का भिन्न भिन्न घेरा है,
वैज्ञानिक मानव के
महामानव होते जाने का
यह कैसा धुंधला सवेरा है ?

□

६

सबसे बड़ा सत्य

दीपक की स्वर्णिम लौ पर
प्राण होमने वाले पतिंगो,
यह चमकती इठलाती लौ
जिस पर तुम पागल हो,
मर मिटने को आतुर हो
—का आधार
मिट्टी का एक दीपक है,
क्योंकि,
सबसे बडा सत्य मिट्टी है ।

परिवार के जाले मे
मोहग्रस्त मकडी से झूलनेवालो,
यह मत भूलो
कि सबसे बडा सत्य राष्ट्रभक्ति है ।

वह कुँआ
जिसमे मेढक फूला फूला तिरता है,
समुद्र नही हो सकता ।
काश, उसकी ओछी छलाग
ऐसा बल पा जाय
कि वह गरीब मेढक [illegible]

सदियों पुराने कूप से बाहर आ जाय,
क्योंकि
सबसे बडा सत्य जडता से मुक्ति है।

अणु मे पहाड से भी
सौगुनी ताकत है,
एक ही चिनगारी दुनिया की कयामत है,
छोटे हो, अकेले हो,
पर चिन्ता किस बात की,
जब बेटे हो सिंह के,
सबसे बडा सत्य, खुद पर विश्वास है।

□

भूमा

मैं भूमा हूं
शून्य में छायी विचार-सत्ता।
क्षितिज से भूमिका
जब विहगम दृश्य देखता हूं—
असंख्य खाली आमाशय मुंह फाड़े
केंचुए-से कुलबुलाते,
अगणित जोड़ी आंखें
आंसू ढारती हुयी,
सैकड़ों मरघटों में उठती
ऊर्ध्वमुखी लपटें,
सड़कों और गलियों में
रेंगती मनुष्यता—
और इन सब के माथे पर छायी हुयी
भयानक निस्तब्धता,
क्रन्दन और हाहाकार को दबाता
मौन का फौलादी चादर,
और उस चादर को चीर कर
ऊपर निकलती मानव की सप्तरूप चेतना
कौंध जाती है अन्तरिक्ष में
बिजली-सी। □

जहाँ—
उभरे वक्ष को मधुकलश मान
मत्त हो जाते हो तुम,
वहाँ—
मै झरती दुग्ध–धार देख
गद्गद् नतमस्तक हो जाता हूं,
कि यही तुममे और मुझमे
फर्क भारी है।

जहाँ—
झपटकर कौर किसी निबल का
अट्टहास करते हो तुम,
वहाँ—
मेरा हृदय सिसक–सिसक रोता है
यही तुममे और मुझमे
फर्क भारी है।

जहाँ—
कचरे–सा भार समझ
वृद्ध चरणो को,
कूडा–घर मे छोड

१२

बारिश का संगीत

थम गयी बारिश
खुल गया नीला धुला आकाश,
सतरंगी चमकीली किरणों की छांहों में
लुक-छिपकर झूमती
प्रस्फुटित गद्गद् हरी कचनार डाली
पास उड़कर गुजरती
नन्ही-सी चिड़िया को बुलाती है—
"आ, ओ सुनहले पंखवाली परी,
निकट आ,
हवा की गोद में हम खेल खेलें,
ले ले तू मेरी हरियाली
पर उड़ना तो सिखा दे,
तू चहक, मैं नाचूं
सृजन के गा आदिम स्वर तू
मैं प्राणपण झूमूं
चूमूं तेरे पर सुनहले गगनचारी
चोंच से तू लाल मेरे दल खिलादे।"

सुनता रहा झिंगुर गीले ठूंठ से चिपटा
सुनता रहा—

"क्या करूँ ?
किस तरह तोड़ूँ सुनहला रिश्ता ?
हर डाली, सुनहली चिड़िया मिले,
मिल नाच खेले ?
फिर मैं कहाँ, क्यों हूँ यहाँ इस ठूँठ पर ?
दाह, शीतल दाह,
चाह, कर दूँ भंग यह स्वप्निल मिलन का खेल।"

—झाड़ के भीतर छिपा जुगनू
निकल बाहर आ, लगा बेवक्त समझाने—
"मत जलो झिंगुर,
खुद ही भस्म हो लोगे,
सौन्दर्य का साम्राज्य शाश्वत
मिट नहीं सकता
काल की कर पालकी
जो सृष्टि में खुलकर विचरता,
प्रलय की तम-ज्योति सामासिक घटा के
गर्भ में घुल घूमता
पर लय न होता।"

गंभीर हो भीका झिंगुर
"हुआ फीका स्वाद जी का
किस तरह खुद को मनाऊँ ?

१३

अध्ययन

मैं अध्ययनरत हू—
मेरे पडोस मे
सास-बहू नही बोल रही,
युग बोल रहा है।
मूल्यो की चीखो और आस्था की सिसकन से
मेरा चिरतन ध्यान टूट जाता है,
छूट जाता है पल्ला विचारो का
शून्य मे ताकता रह जाता हू।

सामने की पुस्तक है युग-मच
जिस पर सास और बहू
जीवन्त अभिनेत्रियो-सी उतरती हैं,
समय नाचता है,
सवाद खडकते है,
तीखे स्वर-यत्रो का नाद-बोध
अलसाए भविष्य के कान खोल जाता है—
मेरा ध्यान डोल जाता है,
तब भी मैं अध्ययनरत हू।
कोसना, झीकना और उछालना—
अपने अर्थ पा गए हैं,
मुझे अफसोस है कि उनके बोलते-बोलते

झाग आ गए हैं,
वाग्देवता प्रसन्न है
फिर मैं किस कारण उदास हू ?
मेरी यह उदासी
समय के त्रस्त चेहरे पर
भय-रेखा बन गयी है,
अतीत और वर्तमान के बीच
यह कैसी ठन गयी है ?
मैं चश्मदीद गवाह
इस हादसे को पेट मे समेट कर
कहाँ जाऊँ ?
लो, सर्वथा निरकुश हो गया अविवेक
अब हाथ छोड बैठा,
स्नेह ? —
वह तो पाताल की एडी तले पैठा,
ओफ्, यह कलह तो निलज्ज किसी मिनिस्टर-सा
धधकती छातियो के डाक बगले मे,
बडी चन के साथ,
जागता हुआ लेटा है—
मैं उसी को पढ रहा हू—
पुस्तक तो बहाना है ।

अहसास

मदमाती रात के जलते ही
बत्ती गुल हो गयी,
दस गुणित आठ के कमरे मे
हाथो को बतियाते देख,
मुंह बंद हो गए।
रह गयी कुछ अस्पष्ट, अव्याख्येय ध्वनियाँ—
साडी की सरसराहट,
चूडी की खनक,
गाल पर गरम सासो की भनक—
रोमाच के जंगल मे
स्पर्श की हवा बहती है—
कुछ ऐसा है,
जो कहा नही जा सकता,
जो न शब्द है, न अर्थ
न ही ध्वनि,
फिर भी कुछ है जो बराबर महसूस होता है,
महसूस,
सिर्फ महसूस।

□

१५

आत्म-चिन्तन

वह बचपन—
जब कपड़े का अर्थ
तन ढँकने से था,
वह बचपन—
जब भोजन का अर्थ पेट भरने से था।
और वह बचपन—
जब गीले आचल का मतलब था
दूध की गगा मे नहाने से,
उसे लौटा दे री
ओ मेरी जवानी।

वह बचपन,
जब गुलाबो पर
गुलाबी पाव धरता था,
और यह जवानी
कि अगारो पर लोह चरण धरता हू,
काल की भट्टी मे तप कर
मेरी वह कोमल गुलाबी देह
कैसी तो कठोर हो गयी है,
पर मन तो वही है फूल-सा

-मना और बिलखता रहता है,
देह के कटीले तकाजा से
अपने गुनाही मन को हर बार बचाया करता हूं,
बचपन की जवानी से तुलना कर मन ही मन
अपने ने आप लजाया करता हू।

◘

१८

कौन-सी माँ

हाथ मे सिगरेट लिए
टाइट-सी जोन्स पहने
आधुनिक 'मदर' को देख,
जाने क्यो मुझे—
हर दो मिनिट बाद सिर का आचल सभालती
वह माँ याद आ जाती है ।

एक माँ यह,
जो डाइनिग टेबिल पर मेरे लिए
ब्रेड और बोनवीटा मिल्क
महगी क्रोकरी मे सजाती है,
और दूसरी माँ वह,
जो हसती-गुनगुनाती
चूल्हे पर गरम नरम
फुलके उतारती है,
मैं कौनसी अन्नपूर्णा का प्रसाद पाऊँ ?
एक माँ है,
जो मुझे—
जबरन छाती से उतार कर
पहियो वाले वॉकर मे बिठा,

लिपटने से डरता हूं,
और आंचल की छाया को
सबसे सुरक्षित समझता हूं।

एक तरफ मेरे गाल पर
धमकी के साथ हैं "हैलो" का पीना-मा खोखला संबोधन,
दूसरी ओर—
प्राणों में पौरुष फूंकनेवाला
आंसू भरे अधरों का ममतामय चुंबन है,
मैं ठगा-सा सोचता हूं—किसको स्वीकार करूं ?

जब कभी होता हूं नींद में,
नन्ही पलकों में स्वप्न लिए
प्रार्थना करता हूं,
"हे भगवान, मेरी मां को मां ही रखना
मदर मत बना देना,
अन्यथा,
टिंकू, रिंकू, पिण्टू और चीटू के
इस अजनबी मेले में मुझे,
प्राणों का व्याकुल प्यार भर,
मुन्नाराजा कह कर कौन पुकारेगा ?

☐

घर

उनके गालो ने जो लौटा दी मेरी नजर
उस दिन की तिजोरी म घर लिया मैंने,
उनके बालो ने जो भेजा है खुशबू का तोहफा
झपटकर बदन पर मल लिया मैंने,
उनकी अदाओ मे उलझा
फुटबोल–सा मन मेरा लुढकता रहा मगर,
उनके उभारो की तलहटी मे घर लिया मैंन ।

घर—
जहा मैं मोम–सा पिघलकर ढल गया हू,
जन्मो से अटल होकर भी पल–पल मचल गया हू,
मनुहारो से रूठा
पीठ फेरे बैठा,
फिसलन भरी जमी पे गिरते–गिरते सभल गया हू,
गिरना मेरी नजर मे
चढने से कम नही,
बहना मेरी नजर मे,
तिरने से कम नही,
हादसे को भेलो या सापो से खेलो,
जो होना है, होगा, मुझे गम नही ।

उभारो के साये मे जो ठडा-सा घर है—
जाने कितने जन्मो से रहता हू मैं,
मजबूरन निकलता हू,
दिनचढे आखेट को—
सघर्ष की चिनगारियो को सहता हू मैं
अगारो पर चलता हू,
लपटो मे जलता हू,
शाम ढले घर जानिब पलटता हू मैं—
तो लगता है फूलो के ढेरो मे आ बैठा,
दूध के भागो की शय्या पर आ लेटा,
कैसी है कोमलता—पल मे सब दुख मेटा,
लेटा था, लेटा हू, लेटा ही रहू,
घर का जो सुख है, वो कैसे कहू ?
शब्दो के बाहर है,
चेहरे से जाहिर है,
घर-सुख के कतरे पे सब-कुछ सहू,
यह घर ऐसा मेरा
जिसने दुनिया को घेरा है,
मैं दुनिया मे,
दुनिया का मुझमे बसेरा है,

सबका घर एक है,
लगता, अनेक हैं,
ओ मालिक, हर घरवासी
इन्सान तेरा है।

□

१८

अनादि पुरुष

यज्ञवेदी के अभिमन्त्रित सोमरस मे
बकरे का रक्त घोल देने पर
बडबडाते खुमार-सा
जन्मा था मनुष्य—
चिंतन मे देवता
कर्म से पशु आज तक
वह इसी कारण है।

दम-तने ललाट-पर्वत पर
उभरी नील नदियो के पास
ज्वालामुख आखो मे
दहकती हिंसा का इतिहास जारी है
कौन वह अज्ञात प्रचड सत्ता अखड मस्ती मे
काया की चिकनी स्लेटो पर
भय, हिंसा और वासना की
खूनी इबारतें लिखती है ?

नीली शिराओ
लाल डोरो,
भुज-विचलित मछलियो
लोह जघाओ, और

बिजली-से कड़कते भाल टूट मे प्रक्षिप्त
ऊर्जा का भीषण वेग
सभाल नही पाता बेचारा मनुष्य
इसीलिये ; वह
जीवन भर यात्रारत रहता।

सिद्ध सन्यासी हो महायोगी
या अनपढ अज्ञानी मजूर
सभी उस अनजानी भीषण ऊर्जा से घकियाये
ब्रह्माड-बेटी धरती के
मटियाले आचल पर
दौड़ाए, लड़ाए
मिलाए और बिछुड़ाए जाते हैं।

हिमालय की तलहटी हो
या मिश्र, यूनान, जापान की धरती—
मा के पयोधर से
मौत की ओर धकेला गया मानव
मादा के उरोजो पर लुढक–लुढक पडता है,
बावजूद इसके
आते कुछ अपवाद भी
वे पाषाण-भेदी द्रष्टा
जो भग कर प्राकृतिक व्यवस्था को

सर्वत्र माँ की
एक अनादि सत्ता की
निष्कलक दुग्धमयी छटा हो
देखते दिखाते हैं,
मगर भूल जाती जल्द
यह जन्मजात ठोठी दुनिया
वह पाठ जो सिखाते हैं।

अब तो—
बची है शब्द-परे बेचैनी
एक बलखाता इन्तजार,
ऐसे विलक्षण हंस का—
जो आएगा,
अवश्य आएगा धरती पर
और बजाय दूध से पानी छाटने की
रस्म निभाने के,
वह सोमरस मे घुले
बकरे के रक्त का कतरा-कतरा
अलग कर देगा।

□

१६

चिल्लाओ मत

मेरे भूखे-प्यासे देशवासियो,
इतना चिल्लाते क्यों हो ?
कुछ बरसों इन्तजार करो—
पीने का पानी आता-आता ही आएगा,
और रोटी ?
रोटी तो तुम्हे,
तुम्हारा पुनर्जन्म ही दिला पाएगा।

वैसे तुम,
पुनर्जन्म और कर्मफल के विश्वासी
ऋषियों की संतान हो,
उस अपर्णा पार्वती के तपस्वी पुत्र हो,
तप करो ?
ये तुम्हारे तपने के दिन है—
भूख-प्यास, सरदी-गरमी और बरसात
सहने के दिन हैं ?
माँ पार्वती ने शिव को पाने के लिए
पत्ते तक खाना छोड दिया था,
तुम जड़ें और पत्ते तो खाते हो,
फिर भी चिल्लाते हो ?

आखिर, यह विकास की लम्बी योजना है,
जो उलझ गयी है जेबो मे,
सुलझाने मे इसे, कुछ सदिया तो लगेंगी,
तुम लोग तो पीहर जाने वाली
नयी बहू की तरह अधीर हो,
पर आगे–पीछे रहना तुम्हे ससुराल मे है,
वह शानदार ससुराल,
जो काली सलाखो के पीछे है,
जब भी तुम जरूरत से ज्यादा चिल्लाते हो,

तत्काल—
एक फर्स्टक्लास नीले वाहन में बैठाकर
वहा पहुँचा दिए जाते हो ?
शुक्र है, तुम जी रहे हो,
आसू ही सही, कुछ-न-कुछ तो पी रहे हो,
तुम क्यो नही उस व्यवस्था के गुण गाते हो,
जिस व्यवस्था मे तुम,
अकाल राहत मजदूरी के
ग्यारह रुपये की रसीद पर अगूठा कर
पाँच रुपए साठ पैसे लाते हो,
फिर भी चिल्लाते हो ?
जिन्हे सुनाने को तुम चिल्ला रहे हो,
वे तो राजभवन मे शपथ लेते ही

कभी के बहरे हो गए,
हम क्या करें भाई
जो तुम्हारे दुखते घाव गहरे हो गए ?
तुम्ही ने तो दारु के पौवे के बदले वोट दिया था,
अब भुगतो,
चिल्लाने से क्या होता है ?
अरे वो सुनेगा कैसे तुम्हारी आवाज
जो जागता हुआ भी सोता है ?
यह तो है तुम्हारी तपस्या का काल,
खाल हड्डिया से चिपट गयी
और बैठ गए है गाल,
सचमुच तुम महर्षि दधीचि की ट्रू-कॉपी लगन हो
उन्होने स्वर्ग के शासक इन्द्र के वज्र हेतु
अपनी अस्थिया दे दी थी,
तुम भी अपनी हड्डिया
लिख दो किसी फर्टीलाइजर कम्पनी के नाम,
क्योकि
तुम्हारी हड्डियो का खाद
जब देश के खेतो मे गिरेगा
तो अनाज का उत्पादन बढेगा,
तुम्हारा यह त्याग भूला नही जाएगा,

मैं गारन्टी तो नही देता,
मगर आश्वासन देता हूँ
कि तुम्हारा नाम
देश के इतिहास मे
रक्त अक्षरो से लिखा जाएगा।

□

२०

फौजी और नेता

वह भाई
जो बोर्डर के बर्फ मे बदूक लिए लेटा है,
बहनो के सुहाग का रखवाला है,
वह भाई—
उस अकारण राक्षसी विध्वस को
चट्टान बन रोकेगा,
जो कल उस पार से आनेवाला है।

सनसनाती बरफीली रात मे
तिल–तिल कर उसके गलने से
मेरे उदास दिल मे दर्द का एक उबाला है
अरे उसी के अधेरो से टकराने के बल पर तो
आज इस देश के कोने–कोने मे उजाला है,
ये उजली पोशाके
इतराना जल्द भूल जाए तो अच्छा,
वरना खाकी वरदी में छिपा उस भाई का चौडा सीना
कसमसानेवाला है।

कोहनियो के बल औधे लेटकर
निशाना साधे

जिसके अंगो से रक्त छलक आया है,
उस भाई को अनदेखा कर, भूल कर
उसी के बलबूते पर
प्राणो का बीमा भर
तुम ये धौली टोपियां लगाए घूमते हो।

वह भाई,
बैरक की गीली माटी मे लेटा
सगीन को सीने से लगाए
शादी की उस एक मात्र रात को
याद किया करता है,
और तुम ?
और तुम उसकी फूल-सी इन गुलाबी यादो को
घिस-घोलकर पीकर किसी डाक बगले मे—
स्कॉचकी बोतल और कॉल-गल का इन्तजार करते हो
और कुछ देर के बाद,
अपने गुडाई तत्वो के बीच बैठ
गरीबो के वोटो को
समेटने की योजना पर विचार करते हो ?
ठीक उन्ही क्षणो मे,

वोडर के वफ मे लेटा
दुश्मन को रायफल की रेन्ज मे बांधे
वह भाई—
तुम्हारी इन करतूतो के औचित्य पर
बारीकी से विचार कर रहा होता है।

□

२१

सकल्प और विकल्प

कहा तो सारे देश के भ्रष्टाचार को
निमूल करने का सकल्प,
और कहा यह व्यक्तिगत पचडो का व्यवधान

—चिन्तन की इस अस्थिर तुला मे बैठे
तुम भूलते ही रहना मित्र,
मैं तो अपने कर्त्तव्य पर डटता हूँ,
तुम बहसो का जाल बिछाकर
स्वय उसमे उलझते रहना,
मैं तो मौन,
सामने के लक्ष्य–पर्वत पर चढता हूँ ?

बढता हू उस नग–शिखा की ओर
जहा से तुम मुझे बौने नजर आओगे
अपने कान खोल रखना बन्धु,
पहाड की उस चोटी से तुम्हे आवाज दू गा,
तब तुम अनसुनेपन का अभिनय मत करना

वरना—
तुम्हारा यह कमजोर मसखरापन
आत्महत्या के हादसे को न झेल न सकेगा

और तुम,
सृष्टि के महानतम जीव
"मनुष्य" होकर भी
न धरती के रहोगे, न आसपास के,
ठीक हाथी के पाद की तरह
शून्य मे विलीन हो जाओगे।

□

२२

जीवन और मौत का गणित

मेरे जीवन के गणित मे हैं अगणित सवाल
जैसे किसी उदास हिप्पी के उलझे हुए बाल,
सवालो के जवाब मे मिले है सवाल,
इन सबका एक ही और वह भी बेमिसाल—
उत्तर अगर है तो केवल मौत ?

मौत—जो दुनिया के सभी सवालो का
आखरी जवाब है,
मगर मैं कहता हू कि मौत
इस हरी-भरी दुनिया का सबसे बडा सवाल है—
जिसे नही कर सके ये हल,
हजारो हिटलर और सिकन्दर
लेकिन जिसकी परतें खोलकर रख गए ह हमारे स
कृष्ण, मुहम्मद, ईसा और बुद्ध—
उनकी मौत इसानियत की जिन्दगी बन गयी,
और उन हिटलरो की जिन्दगी,
हजारो निर्दोषो की मौत बन गयी ।

जिन्दगी और मौत का यह खेल
मेरी कविता अपने मे—
जिन्दगी और मौत का खेल बन गयी है,

खेल जो मनोरंजन नही,
गहरी काली उदासी पदा करता है,
मेरे रोम रोम मे भारी अधेरा और अवसाद भरता है,
मेरा निराश डूबता मन
मुझी से करता है सवाल—
महापुरुष हुए तो क्या ?
और न हुए तो क्या ?
रावण एक मरा होगा,
आज हजारो जिन्दा है,
कस एक मरा होगा,
आज हजारो जिन्दा है—
इन मौजूदा रावणो और कसो की मौत कब होगी ?
हमेशा हमेशा के लिए इनकी मौत
कब होगी ?

□

२३

एक ही सत्ता

मैं ईश्वर मे हू,
ईश्वर मुझमे है ।
ईश्वर मुझसे अलग कुछ नही है,
मैं ईश्वर से अलग बहुत-कुछ हू—
पर हम दोनो के मिलने स ही बनी है,
एक अखड सत्ता,
और वह भी अविभाज्य—
जिसे कहते हैं चेतना,
उसी का दूसरा नाम है—मनुष्य,
हा मैं ही मनुष्य हू,
और मैं ही ईश्वर ।

कोड़ा

मैं नहीं,
मेरी कविता बोलेगी ।

मैं जानता हूं—
तुम रोकना-टोकना चाहोगे उसे,
और घुड़किया दोगे बन्दर की तरह,
मगर रोक न सकोगे ।

मेरी कविता—
तुम्हारी डनलपी पीठ पर
जब कोड़े-सी बरसेगी तड़ातड़,
तो देखेगी दुनिया
कि तुम मेरी गरम राख पर खड़े खड़े
मेरी कविता के कोड़े से पिट कर
दांत पीसते उछल रहे हो ।

तुम्हारा अपाहिज गुस्सा
यह अमीराना प्रतिहिंसा
खोजना चाहेगी मुझे,
मगर, मैं यह मानकर चलता हूं

कि मैं कवि कवि हू,
इसलिए अपनी भीतरी आग से जलकर
पहले से खाक हो चुका हू,
जिस पर तुम खडे खडे उछल रहे हो,
चन्द लमहो बाद धराशायी होने को।

□

२५
अग्नि-पुरुष

ठहरो,
सोचलो अंजाम
फूल पर हाथ बढाने का।

इस फूल मे आग होती है,
जो तोडने पर भभक जाती है—
गरज यह कि
फूल खुद तो जलेगा ही,
तुम भी खाक हो जाओगे।

ठहरो,
सोचलो अंजाम
फूल पर हाथ बढाने का।

फूल मे नाग रहता है
जो छूते ही फूंकारता है,
इसलिए सावधान—
यह प्यारा-सा फूल भयानक है,
जहरीला है, सुंदर है, कयामत है,
मौत का मीठा-सा बुलावा है,
फूल के रूप पर लट्टू न बनो,

वरना फूल मे बसनेवाला नाग
डस लेगा,
और तुम जीवन भर तडपते रहोगे,
इसलिए सोचलो अजाम,
फूल पर हाथ बढाने का।

□

२६

सर्च लाइट

हरे-भरे खेता मे खडे
कान-पूछ हिलाते
भोले-भाले चौपायो की नहीं,
मुझे—
उन दो पगे जानवरो की तलाश है,
जो बिना मेहनत किए, डनलप के पलगो पर
डकारें लेते, टाँगें पसार कर पडे रहते है।

काम-केन्द्रो मे कला ढूढनेवाले ढोगी
खजुराहो के बाहरी पत्थरो मे नही,
मदिरो के भीतर घुसकर
घण्टे हिलाते-दर्शन का अभिनय करते,
ध्यानमग्न मा-बहना की चोली मे नजरें गडाते मिलेगे—
मैं गुस्से से तमतमाती
लाल सर्चलाइट लिए घूम रहा हू,
उन दो पगे निकम्मे जानवरो को ढूढ रहा हू।

बहुमजिली इमारत के वातानुकूल कमरे मे
दो-दो हजार की नरम चेयस पर बैठे मवेशी,
घास नही, मेहनत चबाते हैं,

पसीना पीते हैं,
श्रौर फिर पैसा हगते हैं।

वैसे कोई ज्यादा नही,
करोडपति हो या अरबपति—
हर देश मे मुट्ठी भर मगते है
जो करोडो स्वाभिमानी मेहनतकशो का
खून पीजाने की साजिश किए बैठे है
ऐसे ही भेडियो की तलाश मे,
गुस्से से तमतमाती—
लाल सचलाइट लिए घूम रहा हू।

भूख से बिलबिलाते भारत की छाती को चमन मान,
चैन से टहलनेवालो को
चून की इन्तजार मे जलते चूल्हे की लकडी से पीटना होगा,
श्रब महाभारत उलट रहा है मेरे युधिष्ठिर,
आज के दुर्योधनो को बल से नहीं,
कूटनीतिक छल से जीतना होगा,
क्योकि—
काटे से काटा निकलता है,
लपटो से घी पिघलता है,
ऐसा दो पगा, बहुरूपिया जालिम जानवर
श्रक्सर अजगर या भेडिये का रूप लेकर

इन्सानो के झुड के झुड निगलता है,
उस बहुरूपिए जानवर की तलाश मे
गुस्से तमतमाती लाल सर्च लाइट लिए घूम रहा हू,
गलियो मे, गावो मे,
कस्बो और शहरो मे,
गुस्से से तमतमाती लाल सर्च लाइट लिए
घूम रहा हू,
उन दो पगे निकम्मे जानवरो को ढूढ रहा हू ।

□

२७

अहम्

अपने ही अह मे जीता मनुष्य
कितना दयनीय है
कितना बेबस है ?
एक निरीह घोंघे-सा
रेंगता हुआ वह नही जानता,
किस वक्त उस पर टूट पड़ेगी—
मौत की बिजली,
और वह अपने अह के साथ चिंदी-चिन्दी होकर
हवा मे उड जायगा—
फटती सुरग से उडती धूल की तरह,
तब उस महाकाल की गर्जना
कौन सुनेगा,
जिसकी आवाज करोडो के अहकार से
ज्यादा भयानक है।

□

२८

महान् पाठक

एक पृष्ठ,
एक वर्ष—
पढा, न पढा
उलट दिया उस पाठक ने।

मैं पुस्तक हू,
मेरे रोमो के अक्षर
बराबर पढती है—एक तेज आख,
आखरी पृष्ठ आते ही,
फटाक् से बद कर देगा मुझे
वह अज्ञात महान् पाठक,
और धर देगा किस अनजानी आलमारी या शेल्फ मे,
नही मालूम।

□

२८

मौत एक अर्द्धविराम

वही होता है
जो होना होता है,
तुम्हारे हमारे झीकने से
कुछ नही होता ।

सौन्दर्य हो या पौरुष—
सबका आखरी नतीजा है मौत
और मौत का पहला तकाजा है—
सौन्दय की पौरुष से भेट—
चाहे वह क्षणिक ही हो।

किसी की किसी से भेंट
कभी आकस्मिक नही होती,
पूर्वनियोजित होती है,
जो हँसता है खी–खी कर आज
उसे कल रोना है,
और जो रो रहा है अभी
वह कल हँसेगा—
आशा ही बनती है निराशा,
मगल हो या अमगल,
दोनो का मूल्य बराबर है,

शुभ और अशुभ की तुलना
तराजू मे मेढक तोलने के बराबर है,
एक पकडोगे तो दूसरा निकल जाएगा,
दूसरे को थामोगे तो तीसरा उछल जाएगा ?
जीवन—
रोने–हँसने का एक वाक्य है,
जिसमे कोई विराम नही लगता,
मौत, सिर्फ एक अर्द्ध विराम है,
जो धीरे से लपक कर हमे
आगे ठेल देती है—
महाशून्य मे।

□

असमाप्त यात्रा

घमन भट्टी से निकले
लाल लोह-खड जैसा प्रचड सत्य
हम क्यों नही ढूढ पाते ?
बस हर कदम स्वय को झुठलाते जाते है ।

नीम की पत्तिया रगडकर
कटोरा भर पीलेने से
जिन्दगी की कडवाहट नही पी जाती,
दर्शन बघारने से अगर
दुनिया के राज खुल गए होते
तो निश्चित था
कि वर्तमान पीढी के धड सिर-विहीन होते,
मगर कुकुरमुत्ते के छत्र-सा मौजूद है हमारा सिर,
इसीलिए तो सिरदर्द जारी है
सचमुच हमारी बेसिर-पैर की यह सिर-यात्रा भारी है ।

रहस्य के घटाटोप अधेरे मे
सदा से हम और हमारे पुरखे,
तर्कों के हवाई मुक्के मारते आए है,
उल्लू भी ज्यादा खुशनसीब है,
जो अमावस की स्याह रात मे

अपना लक्ष्य ढूढ लेता है,
किन्तु भक्ष्य मे उलझे हम लोग—
कब और कहा लक्ष्य पाते हैं ?
हम तो बस खाते है, पीते हैं, सोते हैं,
और गाते है सपने मे चन्द गीत मादा के नाम,
और अत मे—
मटके-सा सर लटका अरथी पर
मरघट तक चले जाते हैं।

वक्त का सफेद बगुला
जब हो जाता है सर पर सवार,
तो फौरन हमे मछली मे बदल जाना पडता है,
निष्ठुर मृत्यु-बोध
बिच्छू के दश-सा आखरी सवाल करता है—
धरोहर मे प्राप्त
कुदरत के अनमोल खजाने का तुमने क्या किया ?
तो जवाब मे हम
आखो की खाखल से पानी बहाते हैं।

भाषा, गणित और विज्ञान—
सब खेल हैं प्रतीको के ?
किसी दूसरी नीहारिका की सभावित पृथ्वी से
कोई अनजाना अतरिक्ष यात्री आकर बताए

तो मानें
कि हमारे माथे की उपज इन प्रतीको से—
वास्तविक सत्ता का कितना मेल है ?
वरना तो अब तक का सारा चिन्तन ही,
मनगढन्त ठेलमठेल है,
सदियो पुरानी रपटीली गैल है,
भयकर भुलावो की खूबसूरत जेल है।

कोठी मे भरे अनाज के मानिन्द
हमारा अवचेतन
दृश्यो, बिम्बो और प्रतीको से अटा पडा है,
जब कभी—
कठ से या कलम से बेखबर कुछ दाने बिखर जाते हैं,
तो मानो किसी जबदस्त भुलावे के नशे मे हम
रचना का सुख पाते हैं,
लगता है,
या तो हमे छकाता है कोई छिपकर
या फिर स्वय के साथ औरो को छकाते हैं,
मैं पूछता हू —
निकलकर अपने मस्तिष्क के किले से हम
भला कब-कहा बाहर जाते हैं ?
जाते भी हैं यदि माना,
तो जाना भी क्या सचमुच जाना है ?

या हमारे कपटी मस्तिष्क का ठगीला तराना है ?
जाना, छूना, फेंकना और देखना—
माथे के विद्युत-सेलो मे स्वय को सेंकना है ।

तर्कों का जगल है
शब्दो के पेड,
बिम्बो की हरियाली
चरती मन-भेड
सिर मानो डमरू है मदारी के हाथ,
मदारी दिखता नही, अनपेक्षित बात ?
दुर्गम है दुगम इस जीवन का मम,
हम सबके हाथो मे लाठी-सा कर्म—
मारो या तारो
खुद को या औरो को,
अपने अपने मन-माफिक चिन्तन का वम ।

देह की बन्दूक मे
प्राणो की एक गोली,
बैठाना है लक्ष्य पर,
बुद्धि क्यो डोली ?
शब्द की लोह-प्राचीरों से
कस कर सर टकराने से जो लहू गिरता है,
उसे अभिव्यक्ति कहते हैं,

वैसे भी रुधिर का लाल रग
मोहभग करता है,
वासना के रेशमी उत्सग मे डुबोकर हमे
अनासक्ति के दशन से दग करता है ।

पर, शब्द-माया से रुधिर-भाषा
सत्यतर है,
शब्द पर शका,
लहू पर विश्वास, वृहत्तर है ।

अक्सर फुसलाता है शब्द लहू को
बीमा एजेण्ट-सा सब्ज बातो मे
कभी आजाता चक्कर मे वह
तो कभी बिलकुल नही आता,
और सहज भाव से
वासना के खरतर प्रवाह मे बहता चला जाता है ।

शब्द ही यो सिर हमारा
शब्द ही पैर,
न शब्द सचमुच सिर है,
न शब्द सचमुच पैर ।

महज बेसिर-पैर की चिन्तन-यात्रा
किए जा रहे हम,
जाने क्यों, यों—
ज्यों-त्यों
जिए जा रहे हम ?

□

३१

सुबह एक सम्भावना

थरथराती आधी रात,
अलसाया बेड-रूम
नाम-कढे तकिये पर
औंधाया उपन्यास—
उमगों का मखमली परिवेश खुलता है,
चूहल से बतियाता
नीला डिसटेम्पर,
जीरो का हरा बल्ब
जलता है जलता है
खिडकी के परदे से
ठिठोली करती हवा
चादनी का नन्हा-सा टुकडा
पलग पर पसरे लापरवाह—
चटकीले आचल पर चुपचाप छोड जाती है,
शेम्पू की महक दहकी,
खुले बन्ध देह-गन्ध
बेड-रूम बोझिल है—
अन्तर्मुख साधक-सा
सासो मे ध्वनित छन्द
बजती जल-तरग—
सुबह एक सभावना। □

३२

जुलूस

अहंकार के झण्डे,
काले हाथो मे लिए
उजली पोशाकवालो का आता है जुलूस
हुमकता हुआ,
नारे लगाता—
जिन्होने जन-सेवा का व्रत ठाना है।

आकाश कापता है,
धरती सिसकती है
गाव की समस्याओ के खिलाफ
राजधानी म प्रदर्शन है,
वायुयान मे पहुँचकर,
यहा आलीशान मच पर फूलमाला से लदे,
कहने आए हैं पीडा अपने भाषण मे उन किसानो की
जो बैलो के अभाव मे,
जग लगे हल के पास घुटनो पर हाथ धरे बैठे हैं।

□

६३

पेट

धरती पर जमानत पर छोडा गया हू,
जान है गिरवी, भरम आजादी का,
जिन्दगी भी कतल के मुकद्दमे से कम नही
गुनाह मेरा है यह—
कि इस धरती पर बगर पूछे जनम क्यो पाया ?
और इलजाम है सगीन—
जब रोटी ही न थी यहा खाने को,
तो साथ अपने पेट लिए क्यो आया ?
मेरा इस दुनिया मे जन्म
कतल का जुर्म है,
रोटी और साग नही मिलेगी मुझे,
आसानी से मिलेगा
तख्त पर झूलता वह फासी का फन्दा,
जिसमे लटक जाना है मुझे
ताकि आयदा रोटी की तलाश मे भटकता हुआ मैं,
इस धरती पर बगैर पूछे जन्म न ले सकू ।

□

३४

रोटी और आमाशय

बिलकुल गलत है उनका यह दावा
कि देह पर दिमाग का शासन है,
मै प्रत्यक्ष महसूसता हू
कि सर से पैर तक मेरे शरीर पर
आमाशय की हुकूमत है।

मेरी सारी इन्द्रिया
चलती और रुकती है उसी के इशारे पर।
यह दीगर बात है
कि मेरा आमाशय रोटी का मोहताज है,
और रोटी भी निगोडी
सत्ता के ऊचे ताज मे लटकी है,
जहा हमारे बौने हाथ,
आसानी से नही पहुँच पाते।

□

३५

मेरा देश

डीजल-पेट्रोल से
गधाते-घुघुआते फुटपाथ पर बैठा
मेरा बूढा क्षयरोगी देश
रक्त-वमन करता है।

उधर से गुजरते किसी अफसर को
उबकाई आती है,
मुझे आता है तरस उसकी उबकाई पर,
और दूसरे ही क्षण धधक उठता है क्रोध,
जब देखता हू
कि उस अपटू-डेट अफसर का
चमचमाता बूट
उस फैली हुयी खूनी उल्टी पर
अपनी निमम छाप छोड जाता है—
यह सब देख-सोचकर
मेरा विद्रोही मन
जाने कैसा-कैसा हो जाता है।

☐

३८

क्षणान्तर

वह क्षण यह नही था
—सही है,
पर मैं वही हू जिसने
प्रथम बार ज्वाला को बाहो मे बाधा था,
और तब
दहक उठा था अधकार,
आग को बाधनेवाला मैं,
कब खुद आग हो गया,
कह नही सकता ।

वह क्षण तो वही रहा
जब आग से खेला था,
क्या होड करेगा उस क्षण की यह क्षण
जो महज उसकी राख लिए ढोता है ।

□

२७

सुख-दुख

चुल्लू भर सुख
टोकरो भरा दुख,
सुख झूठा
और दुख सच्चा,
मन मेरे,
क्यो होता है कच्चा ?

□

मेरा मन

शब्द जब उड़ते हैं परिन्दों-से
मन आकाश हो जाता है,
कष्ट जब गड़ते हैं दुहर-से
मन इस्पात हो जाता है,
आनन्द जब कभी गहराता है श्याम घटा-सा
मन मेरा शीतल जल धार हो जाता है।

बावली अभिलाषाएँ
उमड़ती जब गोपियों-सी
मन मेरा नटखट घनश्याम हो जाता है,
शब्द जब उड़ते हैं परिन्दों-से
मन आकाश हो जाता है।

□

३८

बदलते अहसास

गन्ध-मुकुट पेडो-सा झूमना-छोडकर
लोगो ने दर्द के शामियाने ताने हैं
सुहागराती बिस्तर की सलवटें
पेशानी पर चिपकाए—
खुले ग्राम फिरते हैं लोग
मीठी ग्रलसायी नींद मे
एलाम घडी-सी तीखी
चीखने लगती हैं जब ड्यूटी,
तो ग्रामाशय का ऊंघता भोजन
चोट खाए साप-सा फन उठा लेता है,
जहरीले व्यग्यो का विनिमय कर सुबह-शाम,
चाय की चुस्कियो मे खुदकशी होती है।

दो ग्रदद काम्पोज
एक घूट पानी से
हलक मे उतार लोग
सपनो की रानी का घूघट उठाते है,
हर सुबह—
प्रदूषण की स्याही से छाप देती है

आदमकद खबरें,
सड़कों के अखबार पर।

जन्म से बहरी व्यवस्थाएं
सन्नाटा बुना करतीं
मुस्कुराकर लोगों को अव्यवस्थित करती है—
प्यासे गांव के चौराहे पर
बिना हत्थे के हैण्ड पम्प-सी
बेकार जिंदगी मजबूती से स्थापित है।

पड़ी मक्का के हरे खेत में पले
पवित्र प्यार का रेशा-रेशा
खाद के कलैण्डरों में विज्ञापित है,
पोस्टरों की शक्ल में बदले गए लोग
हालात की दीवारों पर चिपका दिए जाते हैं।

धूप के चश्मे-सा रंगीन विचार पहन लेने से
नजर की हकीकत नहीं मिटती,
जिन्दगी के जीने पर ताबड़तोड़ चढ़ने से
लुढ़क जाना, चोट खाना संभव है,
तरकारी में हींग की तरह घुल जाने से ही काम नहीं चलता,
वक्त पर ईंधन-सा जलना भी पड़ता है।

महगे सोफे मे धँसकर टागे हिलाने से
फसल नही उगा करती,
शहर की सडको पर ठेलेवाले का पसीना
पेरिस के परफ्यूम से रोज शाम लडता है,
बीसवी सदी का यह क्या अ्रत हो गया ?
श्रादमी, अफसोस,
श्रादमखोर हो गया ।

□

मिट्टी की चेतना

पूरे देश का कवि हो जाना
सरल है जितना,
उतना ही मुश्किल है
कवि का अपने देश मे हो जाना।

खुशबू बन हवा मे बिखर जाने से
अच्छा है,
मिट्टी बन जकड़ले हम जीवन को
हरे पौधे की जड़ मे घुसकर
नीला फूल बन फूटनेवाली मिट्टी हो—
पगतली से माथे तक
आदमी का उजला इतिहास रचती है।

भावो के सावन मे
आसू की बाढें हो,
या बुद्धि के तर्कान्धकार मे
बिजली की साथे हों—
गधमय धरती के आसरे तमाशे सब।

सूरज की जलती ज्वालामय गोदी से
किरण की रस्सी पर चुपचाप

उतरता है जब कोई
दिव्य चेतन अणु धरती पर
तब शायद हम भोजन के बाद
बिस्तर पर
अन्नमद से नशीली झपकी मे होते है—
मनगढ़त गोते है सब आत्मा के
दीखता जो सब जगह जाता हुआ
पर वस्तुत कोई कही नही जाता है।

एक निर्विकल्प सत्ता का
कल्पित घर है शरीर
कहने को, दिखने को
जैसा भी दिखता है।

पर साचो सच,
ठीक देखो,
कही भी कुछ भी नही—
नही कुछ द द-फन्द
सर्वत्र एक अपरिणामी चेतनता जगमग है,
फूटती जो सलीके से प्रतीको मे
मानव की वाणी बन
गेहू की बाली बन
गुलाब की डाली बन

पानी मे शीतलता, पत्थर मे दृढता बन ?
रोम रोम धरणी का
जाग्रत है, चेतन है,
जडता यदि है कही तो
बस वह नजर मे है।

□

४१

जूते का सिंदूर

सावन के सजल काले बादलो मे
चमकता
बिजली का सिंदूर
प्रकाशित करता है वह
अंधेरे के गाढे जूतो पर लगे
कीचड को ।

अकड्डू अंधेरा
उसके रूखे गंदे जूते
अहंकार मे
रौंदें या ठुकराए धरती को
मगर उपलब्धि तो
केवल कीचड है ।

जबकि,
सूरज की साक्षी मे
लंबी तपस्या से प्राप्त
पराग का कोमल गंध-कोष
खोलकर बिखेरती है कमलिनी
कदमो मे सिर धुनते कीचड पर

क्योंकि सवाल नियति का नहीं
भावना का है ।

अंधेरा घना हो कितना ही
भटके वह आवारा रात भर
निर्दय बेपरवाह
लौ तो रहेगी जलती निष्कंप
सती-सी
सुहाग के झिलमिल कक्ष—
पूजा के घर मे
प्रतीक्षा करती देवता की
जो राक्षस है ।

नही खोलेगा बाहर वह
कीचड़ सने जूते
और घुसने से पहले
छूटेगी आज्ञा तर्जनी-से
उठेगा नही, झुकेगा घूंघट
और बिखर जायगा सिन्दूर
उस जूते पर
जो दुनिया की गंदगी से
लिथड़ आया है,
बिखर जायगा उस पर वह सिन्दूर

जिसे खिलखिलाते कमरे के झिलमिलाते
दर्पण मे
शरमाती अगुलियो के लाल पोरो ने
मीठे सपनो की आशा मे लगाया है।

यह अघेरा है अघेरा
जो उजले सिन्दूर के मीठे सपनो को
कहा से कहा ले आता है ?

□

८२

तब क्या होगा ?

प्रतिभा
अगर है,
तो सर्वाधिक दुरुपयोग उसका
होता है राजनीति मे,
जहा चढते उतरते हैं भाव
बाजार मे किसी जिन्स की तरह।

कागज मे
निर्माण के साथ ही
घुस जाती है दुरगी चाल
जो नोट से वोट खीच लेने के हुनर मे
व्यक्त होती है
बेरहमी से।

कला और साहित्य के भ्रूण अब
होने लगे है विकसित
पारदर्शी टेस्टट्यूब मे
प्रयोगशाला के धुएं-सा
फल गया है जिनका भयानक बनावटीपन।

अधेरे बद तहखाने म
अकेले चूहे की तरह
हम बेमतलब भटकते हुए
सीलन लगी ईटो का फन
कुरेदते रहते हैं ।

कालेज की चहकती लडकियो के बीच
चाय पीना
सवेदना की निजता को जगाना तो है
मगर,
आत्मवचना की गुत्थी का
कोई समाधान नही देता ।

गदी गली मे
बीमार कुत्ते-सी
मुह लटकाए घूमती है
आज की आबोहवा,
कि रेलवे स्टेशन पर खडा वह पेड
जिसके पत्तो पर जमा है
धूल और धुए का अबार
पर्यावरण खिल्ली उडाता
एक मूक साक्षी ।

बेकार है यह भी प्रमाणित करना
कि आजकल हम
जहर ही निगलते और उगलते हैं,
अचभा है तो यही
कि हम ऐसे और वैसे
जीवित है।
जीवित हैं तभी तो सोचते है
कि भावी पीढी का क्या होगा ?

होगा क्या ?
जब एक केपसूल
हमारे सप्ताह भर की भूख,
और लजीज भोजन के
गधोष्ण स्वाद को अनावश्यक कर देगा,
और चलेगा तब कम्पूटर से
इस्पाती जिस्म और जज्बात का
वह रोबोट
हमारे भावाकुल प्यारे घर मे,
तब क्या होगा ?

बच्चो के भूले से
बूढे की लाठी तक को सचालित करेगा

कम्प्यूटर
और घर के सदस्य
देखते होंगे टी वी
किसी अंतरिक्ष कक्ष में बैठकर
अंतर्ग्रहीय प्रक्षेपास्त्रों का अद्भुत खेल ?
तब क्या होगा ?

□

मनुष्य के पक्ष मे

बोलने मे देवता
बरतने मे जानवर
इस बोलने और बरतने के बीच
ढूढना है—
गायब होते मनुष्य को।

हद हो गयी अफीमखोरी की
नशे की अपनी अपनी झोक मे
लुढकनेवाले हैं सब नशेबाज
कि जिनके रक्त मे छटपटाता
सामूहिक मनुष्य एक
सावधान होकर
सिर उठाकर खडा होना चाहता है।

हमारे खून मे पनपती मौत
होठो, गालो और आंखो मे
हस कर व्यक्त होती है,
हम नही हसते कभी खुद पर या गैरो पर
वह तो मौत है
जो बदन के रेशमी गलीचे पर टहलती
सबका मखौल उडाकर हसती है।

यह हँसना भी हमारा
रोने से बदतर है,
सुख मे ताकत नही कि हसा सके,
और दु ख की हिम्मत नही कि रुला सके
अगर विवेक का अभेय कवच हो तो।

इस विवेक की ही तो कथा है लम्बी
अजेय और अतहीन,
जो न हसी की तोप से फटी है
न दु ख की बाढ मे गली आज तक।

समय घोखा है,
फरेब है दिशाओ की कल्पना
एक मिठबोला ठग बैठा है शास्त्रो मे
शब्द की बोतल मे भरा है जहर
तर्क का
जिस पर लेबल हे "सत्य" का
क्या है यह सत्य ?
मिला है कभी किसी को
निचाट नचाट नग्नता से ?
नही चाहिये पोशाकधारी सत्य कोई भी,
भूठ के विपक्ष मे खडा सत्य
एक बडा भूठ है अपने मे।

कैसा कमजोर है वह सच
जो भूठ की वजह से खडा हो,
भूठ हटालो,
गिर जायगा ?
अब खारिज करना होगा
ऐसे परपरित सच के सिलसिले को,
सच की खोज शब्दो मे,
बालू से तेल निकालने का निष्फल हठ है।

खोजना ही है
तो खोजो उस मनुष्य को
जो हम सब के भीतर
जिन्दा होकर भी गायब है ।
उस गुमशुदा मनुष्य को जब ढूढ लोगे
तो मिल जायगा उसके भीतर बैठा
वह सच,
जिसकी सबको तलाश है ।

हमारे बढते नाखून साक्षी है
उस सक्रमण के
जो भेडिए से मनुष्य होने की
भयानक प्रक्रिया है
खून मे छिपा भेडिया

नाखून बढाता है
किंतु मनुष्य का सजग विवेक
बराबर उसे काटता जाता है
आएगा वह दिन भी जरूर
जब समाप्त हो जाएगी गतिविधि
नाखून बढ़ने की ।
फिलहाल,
यह धोखेबाज समय का जादू है
जो मनुष्य और नाखून का
हिस्र द्वन्द्व लिए चलता है
धरती की हथेली पर ।

× × ×

सभ्यता की मकरी रोशनी का आतंक
रात भर लिखता है,
मानवता का काला इतिहास
फुटपाथ के मटमैले कागज पर,
जिसमे लिखी हैं—
मरियल घुटनो और सडियल कुहनियो की गदी मात्राए,
अधनगी देहो के कापते अक्षर,
चिथडो की कोमाए,
जिसमे टगे हैं बेशुमार,

कुपोषण के शिकार—
बच्चों के अनुस्वार,
घावों के नुक्ते,
बहता है जिनमें मवाद स्याही-सा
फुटपाथ के मटमैले कागज पर ।

काले इतिहास की यह अंधी लिपि
पढ़ेगा जब उजला भविष्य
वह कल का आनेवाला मनुष्य—
तो कब्र में भी हमारा निर्जीव चेहरा
शर्म से लाल हो जाएगा ।

बावली धरती के
गोरे-से कानों में
कुछ मनचले मूर्खों ने
टाग दिए हैं अणु बम झुमके
और बजा रहे तालियां
नाच की प्रतीक्षा में
भस्मासुर-से खड़े खड़े ।

वक्त की गहरी नदी के किनारे
खूंखार विचारों के घड़ियाल
घात लगाए बैठे हैं,

आचरण के बच्चे को समूचा निगल जाने को।
अल्हड धरती की लरजती कमर पर
अपनी मौत को तलाशती फिसल रही हैं,
जिनके हाथो मे छलकते जाम हैं झाग वाले
कि मदिरा नही,
तीसरी दुनिया को निचोडकर निकाला गया
लाल-नीला लहू भरा है।

यायावर पूर्वजो के पराक्रमी पावो ने
खीचे थे कभी देशो के नक्शे
चिनवायी थी सत्ता की दीवारें
उठी और धूल मे समा गयी वे
जाने कितनी सरकारें –
जो पेट का कचरा पावो पर डालकर
अपने को 'स्वच्छ" समझती आयी हैं।

क्रातियो मे झुलसता लबा रेगिस्तान
जनता के नाम,
और फल-फूल लदी क्यारी
किसी भाग्यशाली के घर की खेती है,
यह दतकथा नही,
आखो देखी घटना है –
कि सकडो प्राणियो की आतें निगलने वाली

गिद्ध-पत्नी,
अपने दो-चार अंडो को सेती है,
हरी-भरी क्यारी के चारो ओर
उस चालाक भाग्यशाली ने
लगवादी है मजबूत बाड
कानून के काटो की
और खडे कर दिए हैं कुछ
खोखली आशाओं के हरे-पीले लैम्प
जो भुनसते रेगिस्तान मे
ठडी रोशनी फेंक सकें,
और जनता के विद्रोही पहाड
बाड की आड मे
घमडी मुस्कान मे देख सकें ।

इस तरह,
यह भयानक जादू है नए वक्त का,
कि हरी क्यारी मे लाश फूल गयी है मनुष्य की,
और प्राण उसके तडपते है
बाड के उस पार
तपते रेत मे,
अब तोडनी होगी वह बाड,
जड से उखाडनी होगी,

प्राणो मे देह को जाडकर
एक बार फिर मे
जीवित मनुष्य को
खडा करने के पक्ष मे ।}

□

८८

मिश्र के पिरामिड मे बन्द हवा

पिछवाडा
प्राय उतना साफ नही होता
जितना कि आगन
क्योकि,
जन्म लेने पर स्वागत
और मरने पर विदाई की
एक आदिम विसगति
हमारे साथ निरतर है ।

यह भी चितनीय है आखिर
कि बहुसख्यक पत्तियो की अपेक्षा
कतिपय फूलो को
हम अधिक महत्व देते हैं
क्योकि सुगन्ध का स्वार्थ
हमारे भीतर
भूगर्भ की चट्टानो–सा
परत–दर–परत जमा है ।

पुराने बरगद के
खुरदरे तने–से

हमारे भुरभुरे विचार
रेशमी हो सकते हैं—
जब उद्यत हों हम ग्रन्तःकरण से
बीमार पड़ोसी की दवा लाने को ।

शास्त्र के चक्कर मे
रोज गाय का पवित्र दूध पीकर
निरामिष होने का सात्विक भ्रम
बढाता रहेगा
बूचडखाने और मत्स्य-भण्डार
जहा मुर्गी और मनुष्य मे
कोई खास फर्क नही होता ।

कुछ मुर्गे
और उनके ही कुछ साथी
डकार जाते है सबके हिस्से का दाना
तो अजीर्ण से पहले ही
उन्हे खुले कत्लखाने मे
सहजता से काट दिया जाता है।

नैतिकता
कितनी पुरानी दन्त-कथा-सी
मिश्र के पिरामिड मे बद हवा की तरह
हमारे दिमाग मे कैद है,

उसके आजन्म कारावास को
न तो नकारा जा सकता है
और न लाया ही जा सकता है उसे
व्यवहार मे ।

बाहर की हवा
हवा जो ठहरी
चलती रहती है तरह तरह की
उतारते रहते हैं विषधर केंचुल
किसी एकान्त खडहर के पत्थरो मे
और खुदती रहती है नीवें
बहुमंजिला इमारतो की,
सिर उठाए गाती है चिमनिया
धुए के जाल लहराकर
और सृष्टि के इस विराट यन्त्र मे फसा
गतिशील मनुष्य
जबदस्त इस्पाती गोले-सा
गडगडाता रहता है ।

अब डर नही लगता
कि घुग्घू की आड मे
आ बैठी है मौत
हमारी छत पर,

क्योंकि—
वैज्ञानिक की भयानक उंगलियों से त्रस्त मौन
ढूंढती है उपाय
टेस्टट्यूब में बन्द होने से बचने का।

जरूरत है अब
तोड़ा जाय 'मिश्र के पिरामिड को
ताकि फराऊन के वक्त की बासी हवा
आज की ताजा हवा से मिलकर
पोंछ सके—
मनुष्य के पांवों को
जो, उसकी अनथक यात्रा के कारण
पसीने से भीगे हैं।

□

नाम सत्यनारायण व्यास

शिक्षा एम ए, पीएच डी (हिन्दी)

जन्मस्थान हमीरगढ (जिला भीलवाडा)

व दिनांक 10 अप्रेल, 1952

प्रवृत्ति कविता और समीक्षा में प्रधान रुचि

(1) काव्य रचना 1967 से प्रारम्भ

(2) 'समीक्षक डॉ॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी' नामक शोधकार्य प्रकाशित (1985)

(3) 'मन्यास' (प्रकाशनाधीन प्रबन्ध काव्य)

(4) मधुमती राज पत्रिका, इतवारी पत्रिका, अर्पण व स्मारिकाओ आदि मे आलेख व कविताए प्रकाशित

(5) आकाशवाणी से समय समय पर काव्य पाठ

(6) दो दजन अप्रकाशित समीक्षात्मक आलेख

(7) सचिव, बागड प्रदेश साहित्य परिषद्, डूगरपुर

(8) शहर की समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियो से गहरा जुडाव

सप्रति निजी सहायक

जिला एव सेशन न्यायालय

डूगरपुर 314001 राजस्थान